P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-7* March- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

विवेकानन्द जी के शिकागों सम्बोधन में धार्मिक–विस्तारवाद का रेखांकन

बृजभूषण
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
काँधला,शामली,
उ०प्र०

सारांश

धार्मिक–विस्तारवाद समधर्मियों तथा विधर्मियों के बीच हिंसात्मक संघर्ष की ओर संकेत करने वाली विचारधारा है जिसमें एक धार्मिक–समुदाय अपनी संगठित धर्मान्धता से प्रेरित होकर शस्त्र एवं लेखनी के द्वारा उत्पीड़न करके दूसरे समुदाय पर अपनी पूजा पद्धति व दर्शन (विचारधारा) को जबरन थोपता है। हिंसात्मक संघर्ष जिसका परिणाम होता है। एक के बाद अनेक धार्मिक सांस्कृतिक समुदाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, अपने धर्म की पताका फहराते हुए, विश्व के समस्त धर्मो, उनके दर्शनों व प्रतीकों को नष्ट करते हुए, समस्त विश्व में एक धर्म का राज्य स्थापित करना ही धार्मिक–विस्तारवाद का उद्देश्य है। यह धारणा सामाजिक विभिन्नताओं में एकता वाली विचारधारा व सिद्धान्तों का तो विरोध करती ही है साथ प्राकृतिक विभिन्नता के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है। साथ ही यह विचारधारा भारत की प्राचीनतम् सांस्कृतिक मूल्य ''वसुधा कुटुम्बकम्'' (पृथ्वी के समस्त मानव एक कुटुम्ब है) के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है जो सहअस्तित्ववाद को मान्यता प्रदान करती है। विवेकानन्द जी ने यह सम्बोधन ऐसी परिस्थितियों में दिया जब विश्वभर में विधर्मियों के भीतर भारत के धर्म को लेकर विकृत धारणाएँ घर कर गयी थी, जिसको तथाकथित विधर्मी बुद्धिजीवी अपनी लेखनी के बल पर भारत के धर्म व संस्कृति का पिछले सैकड़ों वर्षो से उत्पीड़न कर रहे थे। प्रस्तुत पेपर में धार्मिक–विस्तारवाद के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी के सम्बोधन का तटस्थ विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। स्वामी जी इस सम्बोधन में धार्मिक–विस्तारवाद का रेखांकन ही नहीं करते वरन् इस समस्या के कारणों व इसके समाधान पर भी प्रकाश डालते है।

मुख्य शब्द : धार्मिक–विस्तारवाद, साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता, वंशधर–धर्मांधता, धार्मिक–सहिष्णुता, सह–अस्त्विवाद, पूजापद्धति व दर्शन, पवित्र युद्ध, सार्वभौमिक स्वीकृति।

प्रस्तावना

मानव सभ्यता सदैव उन महान स्त्री एवं पुरूषों की ऋणी रहेगी जिनकी उत्कृष्ठ नेतृत्व व ज्ञान क्षमता ने समाज को एक सही दिशा प्रदान की। स्वामी विवेकानन्द इन्हीं महापुरूषों में से एक है जिनका विश्वधर्म महासभा शिकागों (सितम्बर 1893) में दिया गया सम्बोधन आज भी मानवता की रक्षार्थ प्रासांगिक है। स्वामी विवेकानन्द का यह सम्बोधन इसलिए विश्व प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर पाया कि उन्होंने वैदिक धर्म (हिन्दूत्व) के पक्ष को विश्व पटल पर मजबूती से रखा वरन् इसलिए प्रसिद्ध हुआ कि उन्होंने धर्म के नकारात्मक परिणाम (हिंसा) को विश्व व्यापी समस्या के रूप में स्वीकारते हुए इसके कारणों को समझाया तथा समस्या का समाधान भी दिया। वे सम्बोधित करते हुए कहते है, साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और इनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही है, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रहीं है, यदि ये वीभत्स दानवी न होती तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। वास्तव में यदि हम गहन अवलोकन करे तो पायेगे कि साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता तथा वीभत्स वंशधर धर्मान्धता मानव के स्वधर्म विस्तारवाद के साधन है। जिनके सहारे मानव व मानव समुदाय अपने–अपने धार्मिक मतों को इस सीमा तक विस्तारित करना चाहते है कि सम्पूर्ण विश्व पर उसके धर्म–मत का साम्राज्य हो।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-7* March- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

साहित्यिकावलोकन

धार्मिक सद्भाव एवं समरसता के सन्दर्भ में, स्वामी विवेकानन्द का धर्म–महासभा में सम्बोधन, एकेडेमिक एवं नॉन एकेडेमिक व्यक्तियों एवं ऐजेंसियों के लिए एक मुख्य विषय रहा है। लगभग सभी ने उनके सम्बोधन को सकारात्मक बताया है। आर०एन० न्यूफेल्टड (1987), अपने मूल्यांकन में लिखते है कि विवेकानन्द का धार्मिक बहुलतावाद को केन्द्रित कथन ''मार्ग अनेक लक्ष्य एक'', रामकृष्ण (1836–1888) के उस वैज्ञानिक धार्मिक प्रयोग की ओर संकेत करता है जिसमें वे कहते है कि सभी धर्मो में सत्य है[1]। स्वामी विवेकानन्द जी का सम्पूर्ण कार्य (1970), भाषण का मूल्यांकन हिन्दू धर्म दर्शन पर केन्द्रित है। इस सम्बन्ध में स्वामी जी वैदिक धर्म की व्याख्या करते हुए कहते है कि हम हिन्दुओं के लिए वेद कोई पुस्तक नहीं है बल्कि वेद का अर्थ है सत्य ज्ञान। वेद विभिन्न कालों में विभिन्न ऋषिओं द्वारा खोजे गये आध्यात्मिक सत्यों का संकलन है[2]। इन आध्यात्मिक सत्यों को चार प्रमुख बिन्दुओं में समेटा जा सकता है। एक – सृष्टि का कोई अन्त व आदि नहीं हैं। दूसरा – हम एक आत्मा हैं न कि शरीर। तीसरा – पूर्णतया प्राप्ति तक यह आत्मा जन्म–मरण के चक्र से बद्ध रहती है। चौथा – मुक्ति का अर्थ है अपूर्णता अथवा अज्ञान से स्वतन्त्रता तथा जन्म–मरण से छुटकारा मिलना[3]। हिन्दू धर्म का उद्देश्य है एक आत्मा द्वारा निरन्तर संघर्ष करना जिससे वह पूर्णता प्राप्त कर सके, दिव्यता को प्राप्त हो सके, ईश्वर से साक्षात्कार कर सके, ईश्वर की तरह पूर्ण बन सके[4] । ईश्वर विश्वास अथवा अविश्वास का मुद्दा नहीं है वरन् यह अनुभूति का विषय है। ईश्वर जैसा यदि कोई तथ्य है तो उसे जानना ही होगा, हम विश्वास के आधार पर हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रह सकते। यही कारण है कि विवेकानन्द की हिन्दूत्व की धारणा में गैर आस्थावादियों से लेकर विभिन्न प्रकार के आस्थावादियों के लिए स्थान है। वेदान्त दर्शन की अत्युच्च आध्यात्मिक उड़ानों से लेकर आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों तक, मूर्तिपूजा के निम्नस्तरीय विचारों से पौराणिक दन्त कथाओं तक, बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के निरीश्वरवाद इत्यादि सभी के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है[5]। विवेकानन्द के धार्मिक बहुलतावाद, शान्ति व सहअस्तित्ववाद पर टिप्पणी करते हुए विल्हेल्म हाल्बफास (1988), लिखते है कि उन्नीसवीं शताब्दी में विवेकानन्द जी की ''लक्ष्य एक पथ अनेक'' की धारणा से हिन्दूत्व में सभी मतों व विश्वासों के व्यक्तियों के लिए स्थान है। यह वैदिक परम्पराओं से सम्बन्धित धारणा है जिसमें आधुनिक विश्व के हिन्दू विचारकों ने सभी गैर वैदिक परम्पराओं को समाहित किया है[6]। रोनाल्ड न्यूफेल्डट (1993), लिखते है कि क्या सद्भाव एवं शान्ति के लिए सहमति आवश्यक है? मेरे विचार से ऐसा नहीं हैं। चुनौती यह नहीं कि विभिन्नताओं में एकता पैदा हो, जैसा विवेकानन्द जी चाहते है बल्कि चुनौती है असहमत होते हुए भी सद्भाव व शान्ति से जीना। इसके लिए आवश्यक है एक खुले व्यापक दृष्टिकोण की जिससे विभिन्न मतों के बीच संवाद हो तथा विचार विनियम हो। इससे हमारे मत श्रेष्ठता के बन्धन टूट जायेंगे जैसा विवेकानन्द जी चाहते है[7]। इस प्रकार अनेक व्यक्तियों ने विवेकानन्द जी के भाषण की समीक्षा अपने–अपने दृष्टिकोणों से की है। प्रस्तुत पेपर इनके भाषण की समीक्षा धार्मिक–विस्तारवाद के सन्दर्भ में करता है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत पेपर में अर्न्तवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग करके स्वामी विवेकानन्द के सम्बोधन की समीक्षा का एक तटस्थ प्रयास किया गया है। प्रस्तुत समीक्षा को तीन प्रमुख बिन्दूओं के अर्न्तगत व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। (1) धार्मिक विस्तारवाद को रेखांकित करने का विवेकानन्द जी का ढ़ंग (2) धार्मिक विस्तारवाद के कारण व परिणाम (3) धार्मिक विस्तारवाद की समस्या का समाधान क्या है। समीक्षक के हाथ है, साधन के रूप में, विवेकानन्द जी के विस्तृत सम्बोधन का हिन्दी अनुवाद जो विवेकानन्द साहित्य संचयन नामक पुस्तक में प्रकाशित है। ज्ञात हो कि, विवेकानन्द जी का उक्त सम्बोधन मूल रूप में अंग्रेजी भाषा में दिया गया था जो बाद में हिन्दी सहित अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित हुआ। साधन स्वरूप हिन्दी अनुवादित सम्बोधन तिथिवार 6 (छः) खण्ड़ों में विभाजित व प्रकाशित है। (1) स्वागत का उत्तर, 11.9.1893 (2) हमारे मतभेद का कारण, 15.9.1893 (3) हिन्दू धर्म पर निबन्ध, 19.9.1893 (पठित) (4) धर्मः भारत की प्रधान आवश्यकता नही, 20.9.1893 (5) बौद्ध धर्मः हिन्दू धर्म की निष्पति, 26.9.1893 (6) अन्तिम अधिवेशन में भाषण, 27.9. 1893। यद्यपि विवेकानन्द जी ने अपने इस सम्बोधन में धार्मिक–विस्तारवाद नामक शब्दावली का प्रयोग तो नहीं किया है किन्तु यदा–कदा अनेक जगहों पर इसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में उल्लेख अवश्य किया है। धार्मिक–विस्तारवाद मानव समाज में प्रचलित एक व्यवहारिक धारणा है जो मनुष्य में धार्मिक श्रेष्ठता की भावना से जन्म लेती है। जो धीरे–धीरे धार्मिक सामुदायिक श्रेष्ठता में परिवर्तित हो जाती है। श्रेष्ठता की यह भावना अन्य धार्मिक–समुदाओं को निम्न श्रेणी का समझने लगती है तथा संगठित धर्मान्धता के बल पर अपनी पूजा पद्धति एवं दर्शन (विचारधारा) को दूसरे समुदायों (तथाकथित निम्न समुदाय) पर बलात् थोपा जाने लगता है। परिणाम स्वरूप मानवता हिंसा से रक्तरंजित हो जाती है। इस प्रकार धार्मिक–विस्तारवाद, समधर्मियों तथा विधर्मियों के बीच हिंसात्मक संघर्ष की ओर संकेत करने वाली विचारधारा है जिसमें एक धार्मिक–समुदाय अपनी संगठित धर्मान्धता से प्रेरित होकर शस्त्र एवं लेखनी के द्वारा उत्पीड़न करके दूसरे समुदाय पर अपनी पूजा पद्धति व दर्शन (विचारधारा) को जबरन थोपता है। हिंसात्मक संघर्ष जिसका परिणाम होता है। एक के बाद अनेक धार्मिक सांस्कृतिक समुदाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, अपने धर्म की पताका फहराते हुए, विश्व के समस्त धर्मो, उनके दर्शनों व प्रतीकों को नष्ट करते हुए, समस्त विश्व में एक धर्म का राज्य स्थापित करना ही धार्मिक–विस्तारवाद का उद्देश्य है। यह धारणा सामाजिक विभिन्नताओं में एकता वाली विचारधारा व सिद्धान्तों का तो विरोध करती ही है साथ प्राकृतिक विभिन्नता के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है। साथ ही यह विचारधारा भारत की प्राचीनतम् सांस्कृतिक मूल्य ''वसुधा कुटुम्बकम्'' (पृथ्वी के समस्त मानव एक

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-7* March- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कुटुम्ब है) के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है जो सहअस्तित्ववाद को मान्यता प्रदान करती है। विवेकानन्द जी ने यह सम्बोधन ऐसी परिस्थितियों में दिया जब विश्वभर में विधर्मियों के भीतर भारत के धर्म को लेकर विकृत धारणाएँ घर कर गयी थी, जिसको तथाकथित विधर्मी बुद्धिजीवी अपनी लेखनी के बल पर भारत के धर्म व संस्कृति का पिछले सैकड़ों वर्षो से उत्पीड़न कर रहे थे।

धार्मिक –विस्तारवाद का रेखांकन

हिन्दूत्व (वैदिक धर्म) पर अपना पक्ष रखने का अवसर, स्वामी विवेकानन्द को, धर्ममहासभा ने 11 सितम्बर 1893 को दिया। आयोजकों द्वारा प्रतिनिधियों के स्वागत का उत्तर देने के लिए जिन प्रारम्भिक शब्दों का प्रयोग किया गया वे है ''अमेरिकीवासी बहनों तथा भाईयों''। ये शब्द विश्वभर में विशेषकर पश्चिम जगत में काफी लोकप्रिय हुए। आयोजकों के प्रति आभार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, **मेरा ह्दय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार की सन्यासियों की प्राचीनकाल परम्परा की ओर से मैं आपकों धन्यवाद देता हूँ, धर्मो की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ, और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि–कोटि हिन्दूओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ। मैं इस मंच से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ .... जो सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते है।** अपने इस सम्बोधन में विवेकानन्द जी ने स्पष्ट संकेत दे दिया कि वे एक सन्यासी है। हिन्दू धर्म सभी धर्मो की माता है जो अनेकों मतों वाले सम्प्रदायों का एक संकलन है अर्थात विभिन्नताओं में एकता वाला एक धर्म है जिसको भाषण के तृतीय खण्ड में विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया हैं। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि हिन्दू समुदाय, एक मसीहा, एक पवित्र पुस्तक, एक पूजा पद्धति वाला समुदाय नहीं है वरन् मतविभिन्नताओं वाले सम्प्रदाओं का एक संकलन है, जो मतविभिन्नताओं के बावजूद (समस्त सम्प्रदाय) किसी एक बिन्दू पर केन्द्रस्थ है। विभिन्न वक्ताओं को धन्यवाद ज्ञापित करते समय वह धार्मिक सहिष्णुता को मुख्य बिन्दू मानते हुए उनको कहते है कि वे अपने–अपने सुदूर देशों में सहिष्णुता का भाव प्रसारित करने का गौरव प्राप्त कर सकते है। यह धार्मिक–विस्तारवाद पर उनका अप्रत्यक्ष प्रहार है क्योंकि धार्मिक–विस्तारवाद का विश्व मानव इतिहास साक्षी रहा है जिसने हिंसा के बल विधर्मियों के धार्मिक प्रतीकों व दर्शनों को नष्ट किया। छद्म बुद्धि जीवियों ने इस हिंसा को पवित्र युद्ध (Holywar) कह कर उचित ठहराने का प्रयाय किया है। वे अपने भाषण में स्पष्ट कर देते है कि हिन्दूत्व का अभिन्न अंग है ''सहिष्णुता''। वे कहते है कि – **मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता व सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की शिक्षा दी है।** यदि हम गहन अवलोकन करे तो हम पाते है कि धार्मिक–विस्तारवाद सहिष्णुता के विरूद्ध तो है ही साथ ही यह सार्वभौमिक–स्वीकृति को अपने इस निजि दृष्टिकोण से देखता है कि समस्त पृथ्वी पर धर्म विशेष के दर्शन का ही प्रसार हो तथा अन्य धार्मिक–दर्शन व उनके प्रतीक नष्ट होने चाहिए। यह हमारी प्राकृतिक विभिन्नता के विरूद्ध विचार है। प्रकृति सुन्दर क्यों है? क्योंकि वह विभिन्नताओं से परिपूर्ण विशेषताओं से भरी पड़ी है। ये विभिन्नताएँ ही उसके सौन्दर्य का कारण बनती हैं। प्रकृति की भांति मानव समाज को भी यदि सुन्दर बनाना है तो सामाजिक मत–विभिन्नताओं को जीवित रखना होगा। ये सामाजिक विभिन्नताएँ समाज में उपजे मतों की विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ मत अच्छे, तार्किक व वैज्ञानिक हो सकते है तो कुछ बेसुरे भी। इसका अर्थ यह है नही है कि तार्किक–वैज्ञानिक मतानुयायी बेसुरे मतानुयायियों पर हिंसात्मक आक्रमण करे ब्लकि यह स्वीकारोक्ति जनों के स्वतन्त्र निर्णयों पर छोड़ देनी चाहिए। लेकिन धार्मिक–विस्तारवाद ऐसा नहीं होने देता। वह अपने मत को तार्किक–वैज्ञानिक तथा मानव कल्याणकारी बताकर अन्य मतानुयायियों पर जबरन थोपता है। हिंसा, निराशा व असंतोष इसी का परिणाम होते हैं। विवेकानन्द जी स्पष्ट कर देते है कि हम हिन्दू लोग धार्मिक–विस्तारवाद में आस्था नहीं रखते वरन् सभी धर्मों के मर्म को जानने व अपनाने का प्रयास करते है। वे इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते है कि– **हम लोग (हिन्दू) सब धर्मो के प्रति सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते है।** धार्मिक–विस्तारवाद राष्ट्र की संकल्पना को भी प्रभावित करती है। बहुलतावादी एवं पंथनिरपेक्ष राष्ट्र की अवधारणा को चोट पहुंचाती है। आज विश्व में अनेक ऐसे राष्ट्र देखे जा सकते है जो धर्म विशेष के आधार शासित है तथा अन्य धर्मों के प्रति उनमें सहिष्णुता की कमी है। इस धार्मिक–विस्तारवाद का परिणाम यह हुआ कि आज विश्व में चालीस से भी ज्यादा ऐसे देश है जो इस्लामिक बहुलतावादी है और सैकड़ों देश ऐसे है जो इसाईयत बहुलतावादी है। इनमें से कोई–कोई राष्ट्र तो ऐसा भी है जहाँ अन्य धर्मानुयायियों के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता हेतु कोई स्थान नहीं है। लेकिन भारत देश में ऐसा कभी नहीं हुआ। यहाँ के लोगों ने सर्वदा ''सर्वधर्म सम्भावः'' की ही धारणा को अपने व्यवहार में अपनाया है। धर्म के क्षेत्र में वैचारिक स्वतन्त्रता को प्राथमिकता दी है, जिसके परिणामस्वरूप धर्म के क्षेत्र में विभिन्न दर्शन स्थापित हुए है। इन दर्शनों में वैचारिक भेद होते हुए भी आपस में कभी टकराव देखने को नहीं मिले। अपने राष्ट्र के प्रति गौरव को व्यक्त करते हुए स्वामी जी ने अपने भाषण में कहते है – **मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीडितों तथा शरणार्थियों को आश्रय दिया हैं। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया है, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन जाति के अत्याचारों से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने महान जरथुष्ट्र जाति (पारसियों) के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है।** इस अभिव्यक्ति से स्वामी भी स्पष्ट कर देते है कि धार्मिक–विस्तारवाद की

कीमत विश्व के दो महान व स्थापित धर्मों (यहूदियों एवं पारसियों) को किस प्रकार चुकानी पड़ी तथा मानवता रक्तरंजित हुई। लेकिन इन दोनों ही धर्म के अनुयायियों के प्रति तत्कालीन भारतीय राजाओं व प्रजा ने जिस सहानुभूति तथा सौहार्द का परिचय दिया वह उल्लेखनीय है। लम्बे समय तक चला तथाकथित पवित्रधर्म युद्ध (इसाईयत तथा इस्लामियत के बीच) धार्मिक– विस्तारवाद का ही प्रमाण है जिसने मानव के रक्त बहाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आज विश्वभर में दोनों ही धर्मो के अनुयायियों की संख्या सबसे अधिक है और संख्या आज भी लगातार बढ़ रही है। इसाईयत के विस्तारवाद ने यहुदी धर्म, दर्शन व उनके प्रतीकों को समाप्त करने में ताकत झोंक दी। विस्थापित होकर कुछ यहूदियों को भारत आना पड़ा। दक्षिण भारत के तत्कालीन हिन्दू राजाओं ने उनको शरण ही नहीं दी वरन् अपने धर्म के अनुसार जीने की स्वतन्त्रता भी दी। इस्लामियत के विस्तारवाद ने पारसी धर्म को अपने जन्म स्थान फारस की खाड़ी से निर्वासित कर दिया। निर्वासित पारसियों को भी भारत ने शरण दी। आज मुठ्ठी भर पारसी भारत में निवास कर रहे है परन्तु उनके जन्म स्थान पर उनके धर्म की गाथा गाने को कोई अवशेष नहीं बचा। हिन्दू धर्म को भी धार्मिक–विस्तारवाद से ऐसी ही चुनौती मिली है परन्तु वह अपनी गहन दार्शनिक जड़ों के कारण आज भी जीवित है। विवेकानन्द अपने भाषण के तृतीय भाग में धार्मिक–विस्तारवाद का जिक्र प्रारम्भ में ही करते है। वे स्पष्ट करते है कि धार्मिक–विस्तारवाद के चलते कुछ धर्म अनेक आघात सहने पर भी जीवित है इसका कारण है कि उनके धर्म की आन्तरिक शक्ति की प्रबलता। वे कहते है – **प्रागैतिहासिक युग से चले आने वाले केवल तीन ही धर्म आज संसार में विद्यमान है– हिन्दु, पारसी तथा यहूदी धर्म। इनको अनेकानेक प्रचण्ड आघात सहने पड़े है, किन्तु फिर जीवित बने रहकर वे सभी अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते है। परन्तु जहाँ हम यह देखते है कि यहूदी धर्म ईसाई धर्म को आत्मसात नहीं कर सका, वरन् अपनी सर्वविजयनी दुहिता– ईसाई धर्म द्वारा अपने स्थान से निर्वासित कर दिया गया तथा मुठ्ठी भर पारसी ही अपने महान धर्म की गाथा गाने के लिए अब अविशिष्ट है। वही भारत में एक के बाद एक न जाने कितने सम्प्रदायों का उदय हुआ और उन्होंने वैदिक धर्म को जड़ से हिला सा दिया.............. और जब सारा कोलाहल शान्त हो गया, तब इन समस्त धर्मसम्प्रदायों को उनकी धर्ममाता (हिन्दू धर्म) की विराट काया ने चूस लिया, आत्मसात कर लिया और अपने में पचा डाला।**

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द अपने भाषण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक–विस्तारवाद के मुद्दे को उठाते है। इस भाषण में उनका यही कहना है कि अनेक स्थापित व गैर स्थापित धर्मो (कबीलों के धर्मों) को अपने जन्मस्थान से निर्वासित होना पड़ा है, इससे विजेता स्थापित धर्मों के अनुयायियों की संख्या तो बढ़ी है परन्तु मानवता को खून से नहाना पड़ा है। यह सब मौलिक प्राकृतिक विभिन्नता के सिद्धान्त के विरूद्ध व्यवहार है। जहाँ एक ओर विभिन्नताएँ प्रकृति के सौन्दर्य में वृद्धि करती है तो वहीं दूसरी ओर धार्मिक–विस्तारवाद समस्त पृथ्वी की धार्मिक– दार्शनिक– वैचारिक विभिन्नताओं को नष्ट कर एक रूपीय विश्व की कल्पना को साकार करना चाहता है। वे आगे अपने भाषण में कहते है कि शायद ही धार्मिक–विस्तारवाद का यह दिव्य स्वपन पूर्ण हो क्योंकि यह मानवीय स्वभाव के विरूद्ध है।

धार्मिक–विस्तारवाद के कारण

स्वामी विवेकानन्द धार्मिक–विस्तारवाद का अपने भाषण में केवल उल्लेख ही नहीं करते वरन् उसके कारणों पर भी प्रकाश डालते है। इसको समझाने के लिए वें श्रोताओं के समक्ष दो मेढ़कों (एक समुद्री व दूसरा कुवें का) की कहानी सुनाते है। यह स्वामी जी का किसी सत्य को प्रकट करने का एक बड़ा ही मनोरंजक व दार्शनिक ढ़ंग है। इस कहानी में वें समुद्री मेढ़क तथा कुवें के मेढ़क की बीच बड़ा ही रोचक संवाद प्रस्तुत करते है जिसमें समुद्री मेढ़क कुवें के मेढ़क से कहता है कि ''तुम कैसी बेवकूफी भरी बात कर रहे हो। क्या समुद्र की तुलना तुम्हारे कुएँ से हो सकती है? इस पर कुएँ वाला मेढ़क कहता है, ''जा,जा! मेरे कुएँ से बढ़कर ओर कुछ हो ही नहीं सकता। संसार में इससे बड़ा ओर कुछ नहीं है! झूठा कहीं का? अरे इसे बाहर निकाल दो।'' विवेकानन्द जी कहते है– **यही कठिनाई सदैव रही है। मैं हिन्दू हूँ! मैं अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुआं ही सम्पूर्ण संसार है। इसाई भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठे हुए यही समझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा हुआ उसी को सारा ब्रहमांड़ मानता है। मैं आप अमेरिका वालों को धन्य कहता हूँ क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे–छोटे संसारों की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का महान प्रत्यन्न कर रहे है।** छोटी सी कहानी के माध्यम से स्वामी जी मानव के मतभेदों के कारण को स्पष्ट करने का प्रयास करते है। हिन्दू धर्म दर्शन पर अपना मत प्रकट करते हुए प्रारम्भ में ही धार्मिक विस्तारवाद का उल्लेख करते है और कहते है कि हिन्दू, पारसी व यहूदी धर्म तीनों प्रागैतिहासिक युग से चले आ रहे है जिनको धार्मिक विस्तारवाद के अनेकानेक प्रचण्ड आघात सहने पडे है किन्तु फिर भी अपनी आन्तरिक शक्ति के कारण जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है। जहाँ यहूदी धर्म को अपनी सर्वविजयनी दुहिता ईसाई धर्म से चुनौती मिली वही मुठ्ठी भर पारसी अपने महान धर्म की गाथा गाने के लिए अवशेष है। वहीं भारत में एक के बाद अनेक न जाने कितने मत–सम्प्रदायों का उदय हुआ जिन्होंने वैदिक धर्म को जड़ से हिला सा दिया, परन्तु अपनी आन्तरिक शक्ति से उन सब को आत्मसात कर लिया और अपने में पचा डाला। प्रचण्ड प्रहारों के फलस्वरूप वैदिक धर्म आज भी जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार स्वामी जी स्पष्ट कर देते है कि धार्मिक–विस्तारवाद का एक मात्र कारण है मनुष्यों एवं समूहों की क्षुद्र एवं संकीर्ण सोच जो उनके ज्ञान को व्यापक होने से रोकती है। एक संकीर्ण मत अन्य मतों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है जिसका परिणाम टकराव व हिंसा होता है जो हमारी सहअस्तित्ववाद की व्यवहारिक धारणा को कमजोर करता हैं।

समाधान

स्वामी विवेकानन्द जी अपने सम्बोधन में केवल धार्मिक विस्तारवाद की समस्या का उल्लेख ही नहीं करते वरन् इस भयानक समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। अपने सम्बोधन के अन्तिम चरण में (27 सितम्बर 1893) वह इस पर प्रकाश डालते हुए कहते है **यदि कोई यह आशा कर रहा है कि एकता किसी एक धर्म की विजय और बाकी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी, तो उनसे मेरा कहना है कि भाई तुम्हारी यह आशा असम्भव है। क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जाय? कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करे। क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग इसाई हो जाये? ईश्वर इस इच्छा से बचाये।** एक उदाहरण देकर स्वामी जी इस समाधान को स्पष्ट करने का प्रयास करते है। मानों आपने भूमि में एक बीज बो दिया है और उसे पर्याप्त मिट्टी, वायु व जल दे दिया गया है। तो क्या यह बीज मिट्टी या वायु या जल हो जायेगा? कदापि नहीं, यह विकसित होकर अपनी वृद्धि को प्राप्त होते हुए एक वृक्ष बनेगा। इसी प्रकार यदि एक धर्म–मत का व्यक्ति दूसरे धर्म–मत के व्यक्ति के सम्पर्क में आयेगा तो वे एक दूसरे के मत–दर्शन को जानने का प्रयास करेगा। फलस्वरूप इन मतों में समानता व असमानता खोजने का प्रयास करेगा। इन दर्शनों की गहनता को समझेगा। इन दर्शनों के सारभाग को आत्मसात करके पुष्टिलाभ कर अपनी विशिष्टता की रक्षा करते हुए निजी वृद्धि को प्राप्त करेगा। लेकिन धार्मिक–विस्तारवाद ऐसा नहीं होने देना चाहता है। **स्वामी जी कहते है कि शुद्धता, पवित्रता तथा दयाशीलता किसी समुदाय विशेष की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, वरन् प्रत्येक धर्म सम्प्रदायों ने अतिशय उन्नत चरित्र वाले स्त्री–पुरूषों को जन्म दिया है। अतः इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई यह स्वप्न देखता है कि सारे अन्यान्य धर्म नष्ट हो जायेंगे तथा उसी का धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ।** स्वामी जी अपने आशावादी दृष्टिकोण के साथ यह कहकर सम्बोधन का अन्त करते है कि शीघ्र ही समस्त प्रतिरोधों के बावजूद भविष्य में प्रत्येक धर्म की पताका पर लिखा होगा – सहायता करो, लड़ों मत, ''परभाव ग्रहण न कि परभाव विनाश'', समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद व कलह।

निष्कर्ष

विवेकानन्द जी अपने सम्बोधन में धार्मिक–विस्तारवाद का रेखांकन अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं। वें इसके कारणों पर प्रकाश डालने के साथ–साथ इसका निवारण भी सुझाते हैं। वें पूर्ण रूप से आशावादी है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि सभी धर्मों के लोग एक दूसरे के दर्शनों व प्रतीकों का सम्मान करेंगे, उनके मर्म को समझेंगे, अपनी–अपनी विशिष्ठता की रक्षा करते हुए वे अपने लक्ष्य (जो सबका समान है) को प्राप्त करेंगे और अन्ततः विश्व में शान्ति, सद्भाव व सहअस्तित्ववाद का शासन होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *R. N. Neufeldt, The Response of RamKrishana Mission, in H.G. Coward (ed), Modern Indian Responses to Religious Pluralism, Ablany: State University of New York, 1987.*
2. *Complete Work of Swami Vivekananda, Mayavati Edition, Volume-I, Calcutta: Advaita Ashram, 1970, PP. 6 – 7 Hereafter refered to as C.W.*
3. *C.W. Volume-1 PP. 7-13*
4. *C.W. Volume-1, P. 13.*
5. *C.W. Volume-1, P. 6.*
6. *Chapter 18, 22 in Wilhelm Halbfass, India & Europe, Albany, State University of New York Press, 1988.*
7. *Ronald Neufeldt, Reflections on Vivekananda's Speech at The World Parliament of Religion (1893), Journal of Hindu- Chritian Studies, Volume – 6, Aritcle 4, PP. 3, January 1993.*
8. *व्याख्यानः धर्म–महासभा (हिन्दी अनुवादित), पृ०सं० (1–16), स्वामी विवेकानन्द साहित्य संचयन (2010), रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर।*